Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2021 = 7.380, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, MAR-APR, 2022, VOL- 9/70

शोध आलेख : कबीर काव्य में पारिवारिक सम्बन्ध और जीवन स्वरूप

नीतू गोस्वामी, Ph. D.

उत्तराखण्ड

Paper Received On: 25 APR 2022
Peer Reviewed On: 30 APR 2022
Published On: 1 MAY 2022

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

कबीर काल में प्रतिविम्बित पारिवारिक जीवन के अनुशीलन के सम्बन्ध में यह बात स्पश्ट है कि कबीर का उद्देश्य जीवन के सम्पूर्ण पक्ष का उद्घाटन न होकर अपनी अध्यात्म साधना को सर्वसुलभ बताना था। ऐसी स्थिति में पारिवारिक जीवन का सम्यक उद्घाटन उनकी वाणियों को प्राप्त कर सकता अपेक्षित भी नहीं है। केवल अपने सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए था तो उनके कतिपय अंगों का उपयोग किया है अथवा सामाजिक विकृतियों की आलोचना के प्रसंगों में उनकी एतद्विशयक उक्तियॉ प्राप्त होती है। फिर भी कबीर को पारिवारिक जीवन का और उसके संगठित स्वरूप का पूर्ण अनुभव है। उन्होंने अपने साहित्य में न केवल इसका विवेचन मिला है वरन् पारिवारिक संबंधों की स्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। कबीर ने सांसारिक तथा पारिवारिक जीवन को माया के रूप में अध्यात्मिक साधना के मार्ग की बाधा के रूप में ही माना है; परन्तु उनकी साधना पद्धति संसार या परिवार में रहकर अग्रसर होने की थी। इस कारण उनका पारिवारिक जीवन अनुभव स्पश्ट है।

कबीर के काव्य में परिवार–विशयक चर्चा अधिकाशंतः नारी अथवा कुल वधु के सन्दर्भ आयी है। यद्यपि उसमें सास, ससुर, माता–पिता, देवर–ननद, पुत्र, बन्धु बान्धव तथा पति–पत्नी आदि के सम्बन्धों के निर्देश यत्र–तत्र स्पश्ट मिल जाते है। इन निर्देशों की उस स्थिति से प्रकट है कि उस युग का पारिवारिक जीवन सम्मिलित–परिवार प्रणाली पर आधारित था तत्कालीन संयुक्त परिवार प्रणाली पर कबीर की उक्तियों में प्रकाश पड़ता है। संयुक्त परिवार में दाम्पत्य प्रेम के विकास का कम अवसर प्राप्त है। पति–पत्नी इतनी कृत्रिम और अस्वाभाविक परिस्थितियों में मिलते हैं कि उनमें प्रेम के विकास की तो दूर की बात है, परिचय भी ढ़ंग से नहीं हो पाता।

संयुक्त परिवार में मुख्य रूप से स्त्रियों पर अधिक प्रतिबंध होते हैं। स्त्रियाँ स्वच्छन्दता पूर्वक अपने पति से बात नहीं कर सकती हैं उनके साथ कहीं जा नहीं सकती वे अपनी इच्छानुसार पति से वस्तुएँ प्राप्त नहीं कर सकती हैं परिवार की प्रधान नारी उन सब पर नियंत्रण रखती हैं। परम पति

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

परमात्मा की जो अभिव्यक्ति हुई है, उसमें से यह प्रकट है कि उस समय के परिवारों में गृह कार्य के अन्तर्गत सास का मार्गदर्शन तथा वधु द्वारा उसका आदेश–पालन प्रमुख था–

'सासू कहे काति बहु ऐसे, बिन काटै निसतरिखो कैसे।[1]

यहाँ काम की आज्ञा सूत कातने के लिए है। इसके साथ ही इस उक्ति से यह स्पश्ट होता है कि कार्य किए बिना बन्धुओं का काई महत्व परिवार में नहीं था। संत कबीर ने एक अन्य उक्ति द्वारा यह तथ्य प्रकाशित किया है कि कोई वस्तु वधू की हो जाने से उसे सास का ही बहुत भय था।–

'भैरो हार हिरानौ मैं लजाउँ, सास दुरासिन पीव डराऊँ।[2]

यहाँ पर वधू कहती है मेरे गले का हार खो गया है जिससे मैं लज्जित हूँ, सास से भयभीत होकर छिपती हूँ, प्रियतम से भी डरती हूँ। वधू ने हार खो दिया है। इसलिए वह अपने आप से इस कार्य से लज्जित है, सास से वह इसलिए भयभीत है कि वह तो कुछ कहेगी ही, साथ ही प्रियतम से भी चुगली कर प्रताड़ित करवायेगी। परिवार की स्त्रियों में सासों का भाासन रहता है। ननदों को भी यहाँ अच्छा स्थान प्राप्त रहता है। बहुएँ और विधवाएँ आदि बहुत हीन अवस्था में रहती हैं। सासें बहुओं को परिवार का नौकर समझ कर व्यवहार करती है और बहुएँ सासों को अपना दु मन समझती है। इसी प्रकार जेठानियाँ यह समझती है कि व देवरानियों पर भाासन करने के लिए है। परिवार की लड़कियों का सर्वोपरि स्थान होता है। उनका रूख परिवार की बहुओं के प्रति ठीक नहीं होता।[3] कबीर की अभिव्यक्ति से भी तत्कालीन पारिवारिक सम्बन्धों का ज्ञान होता है, जिनमें बंधुओं के प्रति 'सास' और 'ननद' के व्यवहार बहुत कटु एवं तिक्तपूर्ण है–

सासु ननद दोऊ देत उलाहन, रहव लाज मुख गोई हो।''[4]

सास और ननद उसे उलाहना देती है किन्तु वह इन सबकी विश भरी कटूक्तियों को घूँघट के भीतर चुपचाप पी जाती हैं। बहुएँ स्वच्छन्दतापूर्वक अपने प्रियतम से मिल नहीं सकती थी, बात नहीं कर सकती थी। कबीर की अभिव्यक्ति इस विशय में अप्रतिम हुई हैं।

'सास सयानी ननद जोगनी, उन डर दूरी पिय सार न जानी री।'[5]

सास, ननद, जेठानियों का जेल के प्रहरियों के समान कठिन पहरा रहता था जिसके भय से प्रियतम का महत्व भी नहीं समझ पाती थी। दूसरी उक्ति में कबीर ने केवल ननद को प्रियतम मिलन में बाधक निरूपित किया है– अबाध रूप से प्रिय से समागम न कर सकने के कारण उसका हृदय और मन व्यथित हो उठता है और वह कह उठती है– हमारी ननद निगोड़िन जागे।'[6] कबीर की इस प्रकार की उक्तियाँ तत्कालीन संयुक्त परिवार प्रणाली का स्पश्ट चित्र उपस्थित करती हैं। कबीर की एक अन्य उक्ति द्वारा यह तथ्य प्रकाशित होता है कि पारिवारिक आदर्श के रूप में बधु के लिए सास, ससुर के अनुशासन में रहना तथा देवर, जेठ आदि पारिवारिक जनों के अनुकूल आचरण करना आवश्यक था। किन्तु वेदना की शिला छाती पर रखने की भी सीमा होती है, आखिर कब तक उफ न किया जाय?

इसलिए उन सब के पैशाचिक आचरण के कारण अब तक आदर्श की सम्यक् प्रतिश्ठा न रह गई थी तथा वह केवल पति तक ही अपने सम्बन्ध को सीमित रखने लगी थी।

पहली नारी सदा कुलवंती, सासू–ससुर मानैं।

देवर जेठ सबनि की प्यारी, प्रिय को मरम न जानै।।

अबकी धरनि धरी जा दिन थे, पीय से बात बन्यू रे।

कहै कबीर भाव बपुरो को, आई राम सुन्यूं रे।।(7)

इसके आधार पर यह स्पश्ट अनुमान होता है कि संयुक्त पारिवारिक जीवन में बधु के प्रति स्नेह तथा कद्र भावना का नितांत अभाव था। संयुक्त परिवार में रहने वाली वधु अपने आत्मा की कसमकस एवं छटपटाहट व्यक्त करती है–

मैं सास ने पीव गौंहन आई।

सांई संगि साथ नहीं पूगी, गयो जोबन सुपिना की नांई।।(8)

वधु कहती है जब से भवसुर गृह में परिणीता वधु के रूप में आई तब से कभी भी अपने प्रियतम से साक्षात्कार नहीं हुआ। सावन–भादों की नदी के समान भरा यौवन स्वप्न के समान व्यतीत हो गया। इन उक्तियों से मात्र प्रियतम की ही हो जाना सहज और सामाजिक महसूस होता है। सम्मिलित परिवारों में आज भी प्रायः दृश्टि गत होने वाला यह तथ्य कि मान्य सम्बन्धियों में से वधू का किसी के लिए प्रिय एवं किसी के लिए अप्रिय होना भी प्रकाश में आता है– 'सासु की दुःखों ससुर की प्यारी, जेठ के तरसि डरों रे।।(9)

कबीर जी के एक पद में 'देवर' के विरह में 'जलती हुई कुल वधू' की चर्चा है– 'देवर के विरह जरों हों दयाल।(10) यद्यपि यह चर्चा काव्यात्मक अर्थो में आयी है, यद्यपि उसे अवैध सम्बन्धों की समकालीन विकृति का भी परिचायक कहा जा सकता है। जहाँ तक उसके एतद्विशयक आदर्श की बात है, किन्तु देवर तथा भाभी के सम्बन्धों के तत्कालीन ऊपर निर्दिश्ट स्वरूप को प्रकट करते हुए डॉ0 राम खेलावन पाण्डेय का मत है कि 'अर्थ संकट' की विवशता के कारण द्विरागमन के पश्चात् ही भुवन परदेश चले जाते और कुछ कमाकर लाने की चिंता करते थे। परदेश में रहते समय अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध हो जाता और पत्नियों के मानसिक क्लेश का कारण बन जाता। घर परिवार में देवर से हँस–बोल सकने की स्वतंत्रता के कारण देवर–भावज में मधुर–भाव जागना स्वाभाविक था। युवा और रसिक देवर भाभियों के स्नेह अर्जन की चेश्टा कम नहीं करते एवं उसकी परम परिणति अवैध यौन सम्बन्ध में होती।(11)

इसके अतिरिक्त पति–पत्नी के सम्बन्धों के निर्देश पारिवारिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में लाते हैं। सास–बहुओं, ननद–भाभियों में छोटी–छोटी बातों को लेकर झगड़े होते हैं। स्त्रियों के पारस्परिक सम्बन्ध कटु हो जाते हैं। प्रायः परिवार में कलह रहता है। इन सबका अंतिम परिणाम यह

होता है कि स्त्रियाँ अपने पतियों को परिवार से पृथक होने के लिए विवश करती है। पुरूश भी अहर्निश के झगड़े से बचने के लिए पृथक होकर रहने का निर्णय कर लेते हैं। विशम परिस्थितियों में ऐसा होना स्वभाविक भी था। इसके अतिरिक्त उससे यह भी प्रकट होता है कि पति–पत्नी का पारस्परिक झुकाव इतनी अधिक मात्रा में हो चुका था कि अन्तर्दृश्टि के आधार पर इन सम्बन्धों की असत्यता प्रमाणित करने की आवश्यकता का अनुभव कबीर जैसे लोक–कल्याण का व्रत लेने वाले संत साधक को पड़ी–

कौन पुरूश को काकी नारी, अभि आंतरि तुम्ह लेहु विचारी।'(12)

क्योंकि पुरूश की स्थिति यहॉ तक आ गई थी कि पत्नी का मुख देखने में ही सुख का अनुभव करता था–

तिरिया का वदन देखि सुख पावै,
साधु की संगति कबहुॅं न आवै,(13)

इसके साथ ही अन्य उक्तियों से यह भी ध्वनित होता है कि सपत्नी के कारण नारियों द्वारा पर पुरूश का वरण का भी परिचय मिलता है–

कहु कबीर जब लहुरी आई, बड़ी का सुहाग टरिगो।
लहुरी संग भई जब मेरे, नेंसी अउर धरिगो।(14)

लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समाज में पतिव्रता तथा सुशीला नारियों का अभाव था, या पारिवारिक जीवन पूर्णतया भ्रश्ट ही हो चुका था। पारिवारिक जीवन के बीच ऐसी आदर्श नारियाँ थी एवं प्रेम सम्पादन में सफल थी जिसका चित्र इस प्रकार मिलता है–

दोजग तौ हम अंगिमा, यहु डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिए, वास पियारे हुझ।।(15)

पितृ ग्रह में रहने वाली कन्या की स्मृति की अभिव्यक्ति भी कबीर वाणी में इस प्रकार मिलती है–

निस दिन सासै घाव नींद आवै नाहीं।
पिया मिलन की आस नैहर भावै नहीं।।(16)

समकालीन परिवार में वधु की स्थिति के आधार पर उसके जीवन से सम्बन्धित उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त उसके अन्य इतर सम्बन्धों के माध्यम द्वारा लक्ष्य किए जा सकते है। माता–पिता तथा पुत्र–पुत्री के पारस्परिक सम्बन्ध भारत की धरती में रहने वाले परिवार में अत्यन्त महत्वपूर्ण हुआ करते हैं जिसमें पिता का स्थान सबसे महत्व का है। कबीर की अभिव्यक्ति से स्पश्ट है कि माता–पिता के आधार पर व्यक्ति अथवा पुत्र की सामाजिक स्थिति का निर्धारण होता था– 'गनिका को पूत पिता कासौ कहे।' कबीर साहित्य में इससे सम्बन्धित समकालीन आदर्श तथा विकृति दोनों ही रूपों का द्योतन करने वाले उल्लेख मिलते हैं–

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

'वैस्या केरा पूत ज्यूं, कहै कौन सूं बाप।'

दोनों की अभिव्यक्ति का तात्पर्य एक है। इससे समाज की विकृतियों का पूर्ण आभास होता है। माता के क्षमाशील व्यक्तित्व का निदर्शन कबीर की अनेक उक्तियों में हुआ है। जिसे लेकर उन्होंने हरि को जननी तथा स्वंय को बालक कहकर अपने अवगुणों के लिए क्षमायाचना की है–

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुण बकसहुं मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चिंत रहै न तेते।।
कर गहि केस करै जौ धाता, तऊ न हेतु उतारै माता।
कहैं कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुःखी दुःखी महतारी।।[18]

यहाँ पर कबीर ने प्रभु को माता की समस्त महत्ता क्षमाशील के रूप में प्रकट किया है। वे कहते है कि हे प्रभु आप माता है और मैं तुम्हारा अबोध बालक हूँ। तुम मेरे अवगुणों एवं पापों को क्षमा क्यों नहीं कर देते? बालक दिवस में न जाने कितने अपराध करते हैं किन्तु माता के हृदय में कुछ भी नहीं रहता। माता का हाथ पकड़कर, कभी बाल आदि खींचकर बालक उसे कश्ट पहुँचाता है लेकिन तो भी माता उससे अपनी ममता और स्नेह छाया नहीं हटाती। कबीर बुद्धि पूर्वक विचार कर एक बात कहता है वह यह कि यदि पुत्र दुःखी रहता है तो माता भी उसके दुःख से व्यथित रहती है। भाव यह है कि प्रभु मैं दुःखी हूँ, आप मेरे दुख से व्यथित होकर मेरा दुख हर लीजिए। यद्यपि आध्यात्मिक दृश्टिकोण से उन्होंने सांसारिक सम्बन्धों की ही भॉति माता–पिता के सम्बन्धों को भी माया का ही एक रूप माना है–

माया माता माया पिता अति माया अस्तरी सुता।[19]

तथापि जन्मदात्री तथा स्नेह भरे संस्कारों द्वारा पुत्र के जीवन निर्वाह में महत्वपूर्ण योगदान करने वाली मॉ के सामाजिक महत्व की उपेक्षा भी नहीं कर सके हैं। जहाँ तक परिवार में माँ के मातृत्व की सार्थकता का विशय है। कबीरदास ने सुन्दर अभिव्यक्ति की है–

जिहि कुलि पुत्र न ग्यॉन विचारी
बाकी विधवा काहे न भई महतारी।।[20]

जिसके अनुसार उसकी सार्थकता ज्ञानवान पुत्र को जन्म देने में ही है, अन्यथा उसका विधवा होना ही श्रेयस्कर है। मातृ–हृदय के करूण स्वर को प्रतिध्वनित करते हुए कबीर एक पद में कहते हैं कि पुत्र के निठल्लेपन के कारण माता रोती हुई कहती है कि अब बच्चों का भरण–पोशण कैसे होगा–

मुसि–मुसि रोबै कबीर की माई। ए बारिक कैसे जीवति खुदाई।[21]

यह उल्लेखनीय है कि इस युग के पारिवारिक जीवन में पुत्र की प्राप्ति का महत्व सर्वाधिक था। यद्यपि ई वर प्राप्ति के मार्ग में दूसरों की ही भॉति पुत्रों से भी विरक्त होने का उद्देश्य देते है–

सुत दारा का किया वसारा, अंत की बेर भए वरधारा।[22]

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

दूसरी उक्ति में कबीर जी कहते हैं–

पुत्र कलत्र लक्ष्मी भाइ आ इन ते कहु कवेन सुख पाइआ।[(23)]

संत कबीर पुत्र और लक्ष्मी का आकर्शण निरूपित करते हैं। उनका मत है कि इनसे कोई भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। कबीर ने तत्कालीन पुत्र और पिता के सम्बन्ध को निरूपित करते हुए कहा है कि–

जीवत पित्रहिं मारहिं डंगा, मूंवां पित्र ले धालै गंगा।
जीवत पित्र कूं अन्न न ख्वायैं, मूंवा पाछैं प्यंड भरावै।
जीवत पित्र कूं बोलै अपराध, मूवां पीछै देहिं सराध।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यूं पावे।[(24)]

उस युग के घिनौने समाज का चित्रांकन करते हुए कबीर कहते हैं कि पुत्र पिता के वृद्धता प्राप्त होने पर डंडे का प्रहार करता था। उदर पूर्ति के लिए पर्याप्त अन्न नहीं देते थे। कर्णकटु अशोभनीय बातें कहते थे। पिता के प्रति पुत्र का ऐसा व्यवहार कबीर को आश्चर्यान्वित कर देता है। निम्न वर्ग के दलित समाज का यह चित्र सही हैं आज भी किसी–किसी परिवार में जो पिता द्रव्य नहीं पैदा कर रहा है, मूढ पुत्र के शिकार बहुत से पिता बने हुए हैं। कबीर समाज के प्रेक्षक थे। इस हेतु वह समाज की इस गहराई का अध्ययन कर सकने में समर्थ हुए है। कबीर की प्रत्येक उक्ति अदभुत और अप्रितम हैं उन्होंने दूसरी उक्ति में माता–पिता और पुत्र के सम्बन्ध को स्वार्थी तत्व के रूप में निरूपित किया है–

तात–जननि कह पूत हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह प्रति पाला।[(25)]

कबीर यहॉ कहते है कि पुत्र को जो माँ बाप इतना अधिक स्नेह–दुलार और आशीर्वाद दे–देकर पालन–पोशण करते हैं, उसमें उनका स्वार्थ निहित है। इसी प्रकार उन्होंने पति–पत्नी के सम्बन्ध को निरूपित किया है– वे कहते हैं–

'कामिन कहै मोर पीउ अहै, बाघिन रूप गिरासा चाहे।'[(26)]

जो नारी प्यार भरे भाब्दों में प्रियतम को अपना कहती है। उसे कबीर बाघिन के सदृश कलेजा भक्षण करने वाली कहते हैं। उपर्युक्त वर्णन के विवेचन से स्पश्ट होता है कि तत्कालीन युग में माता–पिता पुत्र के सम्बन्ध–प्रेम स्नेह और श्रद्धा पर नहीं अवलंबित ये वरन् वे एक–दूसरे के स्वार्थ पर अवलम्बित थे। माता–पिता वृद्ध हो जाते थे तब पुत्र उसके साथ पशुता का व्यवहार करता था। पारिवारिक जीवन के विवेचन से प्रकट है कि समकालीन परिवारों में नारी–जीवन की स्थिति पुरूशों की अनुवर्तिनी के रूप में थी। पारिवारिक तथा सामाजिक दृश्टिकोण से पतिव्रत धर्म का आदर्श उस समय भी प्रतिश्ठित था, तथापि कहीं–कहीं उसमें विकृतियाँ भी दृश्टिगोचर होती थी। सास या ननद के रूप में भले ही उसका पारिवारिक महत्व दिखाई पड़ता हो लेकिन अन्य रूपों में उसकी दशा वि ोश

संतोशजनक नहीं दिखाई पड़ती जो कि पुत्र के लिए माँ की उपरिनिर्दिश्ट करूण उक्तियों तथा नववधु की पारिवारिक दुरवस्था के पूर्ववर्ती विवेचन से प्रमाणित हैं पति–पत्नी तथा देवर एवं जेठ से सम्बन्धित पूर्व निर्दिश्ट उल्लेखों से यह भी प्रकट है कि नारी–जीवन एक प्रकार से विलास तथा पारिवारिक अनुशासन में सेवा करने मात्र का साधन रह गया था उसकी निजी आशा आकांक्षाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व न था। जहाँ तक कबीर के दृश्टिकोण का विशय है, उन्होंने कामिनी रूप की ही निंदा की है। यदि सम्पूर्ण नारी–समाज के प्रति उसका हीन दृश्टिकोण रहा होता तो वे साधक का आदर्श सही और पतिव्रता के रूप में न चित्रित करते–

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाय।
नैनूं रमइया रमि रहया, दूजा कहाँ समाइ।।(27)

और न परमात्मा की क्षमाशीलता की अभिव्यक्ति जननी के रूप में ही प्रस्तुत करते। अतएव ऐसे उल्लेखों द्वारा उनकी नारी के प्रति सामान्यतः सम्मान भावना प्रकाश में आती है। इतना ही नहीं प्रत्युत नारी के प्रति उनका एक संतुलित सामाजिक दृश्टिकोण भी प्रस्तुत हुआ है। जिसे उन्होंने साधना के अंग के रूप में भी रखा है। गृह–द्वारा, सुत और वित्त के प्रति विरक्त भाव अपनाने वाले संत रज्जाब भी समस्त नारी समाज के प्रति मातृ भाव की दृश्टि रखकर विशम–वासना से निवृत्ति होने के पथ प्रशस्त करते तथा अवस्था के विचार से बहन एवं पुत्री के पवित्र दृश्टिकोण की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार संत कबीर ने अपनी वाणी में अपने युग के पारिवारिक सम्बन्धों और जीवन के विवेचन यथार्थ रूप में किया है। उन्होंने सामाजिक–पारिवारिक सम्बन्धों को आध्यात्मिक रूप में ढालकर आम आदमी को जागृत करने का काम किया हैं। वे इस सम्बन्ध को माया के रूप देकर धर्म से जोड़ते हैं। उनका यह दृश्टिकोण भारतीय–संस्कृति के आदर्श स्वरूप के साथ ही पारिवारिक जीवन के परिश्कार रूप को भी प्रदर्शित करता है अतः यह आज के युग में भी प्रसंगानुकूल दिखाई देता है।

सन्दर्भ

कबीर ग्रन्थावली– भयाम सुन्दर दास– पद– 228
वही, पद 378
भारतीय समाज और संस्कृति– श्री भाम्भू रत्न त्रिपाठी– पृ0 260
कबीर बीजक– सं0 विचार दास की टीका– पृ0 305
कबीर– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी– पृ0 334
वदी, पृ0 333
कबीर ग्रन्थावली – पद 229
वही, पद 226
वही, पद 260
वही पद – 230
पाटल– संत साहित्य विशेशांक– पृ0 58–60
कबीर ग्रन्थावली पद 89
वही पद – 91

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

संत कबीर – राग आसावरी– 32
कबीर ग्रन्थावली– अंगना, सा0 7
कबीर– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – पृ0 257
कबीर ग्रन्थावली– पद– 126
वही, पद, 111
वही, पद, 84
वही, पद, 125
वही, पद, 12
वही पद, 128
संत कबीर – भागु घनाक्षरी– पद– 4
कबीर ग्रन्थावली – पद 356
कबीर बीजक– रमैणी– 78
वही, रमैणी, 78
कबीर ग्रन्थावली– अगंना, सा0 4

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies